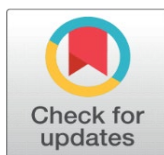


THE PORTRAYAL OF THE DALIT PEOPLE IN PREMCHAND'S FICTION

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में दलित-जन का चित्रण

Dilipbhai J. Vasava ¹✉

¹ Assistant Professor, M.B. Patel College of Education, Sardar Patel University, Vallabh Vidyanagar, India



Received 24 April 2025
Accepted 26 May 2025
Published 30 June 2025

Corresponding Author

Dilipbhai J. Vasava,
dilipvasava4meet@gmail.com

DOI
10.29121/ShodhSamajik.v2.i1.2025.99

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2025 The Author(s). This work is licensed under a [Creative Commons Attribution 4.0 International License](#).

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.



ABSTRACT

English: As Premchand was a socially conscious storyteller who authored a substantial body of both short stories and novels, he masterfully portrayed the social realities of his era in both his short fiction and his longer works. Premchand's narrative literature offers a comprehensive depiction of the various issues plaguing society during his time. His fiction portrays a wide spectrum of challenges—ranging from the problems of rural life to issues concerning family dynamics, education, religion, communal relations, industrialization, the struggle for Indian self-rule, and socio-economic exploitation. Furthermore, his narrative works chronicle numerous other problems prevalent in the society and times in which he lived. The issue of untouchability (the 'Dalit problem') is one such critical concern that finds expression in both his short stories and his novels. During Premchand's era, the living conditions of Dalits (the 'untouchables') within society were far from satisfactory. Given that Dalits constituted an integral part of Indian Hindu society, struggles and movements were underway at various levels to bring about improvements and upliftment in their status.

Hindi: जैसा कि प्रेमचन्द एक सजग कथाकार थे और उन्होंने पर्याप्त मात्रा में कहानी एवं उपन्यास दोनों लिखे हैं, इसलिए उन्होंने अपने कहानियों उपन्यासों दोनों में अपने समय के सामाजिक यथार्थ को बखूबी अभिव्यक्त किया है। प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में तत्कालीन समय के विभिन्न समस्याओं का व्यापक चित्रण मिलता है। ग्रामीण जीवन की समस्या से लेकर पारिवारिक समस्या, शैक्षिक समस्या, धार्मिक समस्या, साम्प्रदायिक समस्या, औद्योगिक समस्या, भारती स्वाध्यायनीत की समस्या, सामाजिक-आर्थिक शोषण की समस्या तक का चित्रण प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में मिलता है। इसके अलावे तत्कालीन समय एवं समाज की अन्य कई समस्याएँ हैं, जिसका वर्णन प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में मिलता है। अछूत समस्या (दलित समस्या) एक ऐसी ही समस्या है, जिसका वर्णन उनके कहानियों एवं उपन्यासों दोनों में मिलता है। प्रेमचन्द के समय समाज में दलितों (अछूतों) की जो जीवन-स्थिति थी, वह बहुत बेहतर नहीं थी। चूंकि दलित भारती हिन्दु समाज के अभिन्न अंग थे, इसलिए उनकी स्थिति में सुधार एवं बेहतरी के लिए कई स्तरों पर संघर्ष एवं आंदोलन जारी था।

Keywords: Premchand, Fiction, Social Realism, Issues, Dalits, Untouchables, Rural Life, Exploitation, Society, Reform, प्रेमचन्द, कथा-साहित्य, सामाजिक यथार्थ, समस्याएँ, दलित, अछूत, ग्रामीण जीवन, शोषण, समाज, सुधार

1. प्रस्तावना

जैसा कि प्रेमचन्द एक सजग कथाकार थे और उन्होंने पर्याप्त मात्रा में कहानी एवं उपन्यास दोनों लिखे हैं, इसलिए उन्होंने अपने कहानियों उपन्यासों दोनों में अपने समय के सामाजिक यथार्थ को बखूबी अभिव्यक्त किया है। प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में तत्कालीन समय के विभिन्न समस्याओं का व्यापक चित्रण मिलता है। ग्रामीण जीवन की समस्या से लेकर पारिवारिक समस्या, शैक्षिक समस्या, धार्मिक समस्या, साम्प्रदायिक समस्या, औद्योगिक समस्या, भारती स्वाध्यायनीत की समस्या, सामाजिक-आर्थिक शोषण की समस्या तक का चित्रण प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में मिलता है। इसके अलावे तत्कालीन समय

एवं समाज की अन्य कई समस्याएँ हैं, जिसका वर्णन प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में मिलता है। अछूत समस्या (दलित समस्या) एक ऐसी ही समस्या है, जिसका वर्णन उनके कहानियों एवं उपन्यासों दोनों में मिलता है। प्रेमचन्द के समय समाज में दलितों (अछूतों) की जो जीवन-स्थिति थी, वह बहुत बेहतर नहीं थी। चूंकि दलित भारती हिन्दु समाज के अभिन्न अंग थे, इसलिए उनकी स्थिति में सुधार एवं बेहतरी के लिए कई स्तरों पर संघर्ष एवं आंदोलन जारी था। प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में भी दलितों की जीवन-स्थिति एवं संघर्ष का चित्रण स्पष्टतः मिलता है। प्रेमचन्द ने अपने समय में दलितों के जीवन एवं समस्या को जिस रूप में देखा, उसको वैसा ही अपने कथा-साहित्य में व्यक्त करने की कोशिश की। प्रेमचन्द हिन्दी के न विरले लेखकों में हैं, जिन्होंने दलित की मुक्ति के लिए पहली बार व्यवस्थित रूप से रचनात्मक संघर्ष किया एवं अम्बेडकर के वैचारिक संघर्ष के साथ ही साथ हिन्दी में दर्शित विमर्श की एक महत्वपूर्ण शुरुआत कर दिया था, जो अपने प्रभाव में एक क्रांतिकारी कदम है। हालांकि कुछ दलित-विचारकों को छोड़ दें तो अधिकांश लोग प्रेमचन्द की भूमिका को स्वीकार करते हैं और जन्मना दलित न होते हुए भी प्रेमचन्द की प्रगतिशील भूमिका को दलित आन्दोलन के लिए जरूरी प्रस्थान मानते हैं, यद्यपि कि प्रेमचन्द जन्मना दलित नहीं है और दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की कसौटी पर उनके साहित्य को मात्र दलित-साहित्य नहीं कहा जा सकता, फिर भी दलित साहित्य को कोई भी यात्रा प्रेमचन्द के बिना अधूरी है। प्रेमचन्द के दलित चित्रण के संबंध में कंबल मारती कहते हैं। एक बात में यह कहना चाहता हूँ कि प्रेमचन्द के साहित्य में दलित नहीं है, बल्कि दलित समस्या है। यह वे बखूबी जानते थे कि दलित सिर्फ अस्पृश्यता से ग्रस्त नहीं है, वरन उनकी समस्या ज्यादा बड़ी है। वे आर्थिक शोषण, व्यभिचार, अत्याचार, धर्मान्तरण, शिक्षा, विषम समाज व्यवस्था गरीबी, अपराध, समता स्वतन्त्रता और प्रतिरोध जैसी दलित समस्या के सभी रूपों से परिचित थे। यहाँ हम उनकी कहानियों एवं उपन्यासों दोनों में अलग-अलग दलितों के चित्रण को देखने का प्रयास करेंगे प्रेमचंद की कहानियों में दलित-जन का चित्रण प्रेमचन्द ने दलित जीवन पर पर्याप्त कहानियाँ लिखीं हैं। डॉ. मैनेजर पांडेय का कहना है, 'हिन्दी के जिस गैर दलित लेखन ने सबसे अधिक प्रभावशाली दलित कहानियों की रचना की है, वह है प्रेमचन्द। प्रेमचन्द की दलित जीवन से जुड़ी रचनाओं पर अम्बेडकर के आंदोलनों और विचारों का गहना असर है। अगर आप प्रेमचन्द की दलित जीवन से जुड़ी कहानियों के प्रकाशन काल को ध्यान से देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी। १९२७ के पहले प्रेमचन्द ने 'लोकमत का सम्मान', 'सौभाग्य के कोड़े' और 'मन्त्र-एक (१९२६)' जैसी कहानियाँ लिखी थी, जिनमें कोई विशिष्ट दलित चेतना नहीं, सामान्य मानवीय करुणा की अभिव्यक्ति थी। लेकिन १९२७ में अम्बेडकर के महाद में चलाए गए आंदोलन के बाद दलितों के बारे में प्रेमचन्द के दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखलाई देता है, जिसकी पहली अभिव्यक्ति मंत्र जो (१९२८) नामक कहानी में है। १९३० के बाद अम्बेडकर के मन्दिर प्रवेश सम्बन्धी आंदोलन का प्रेमचन्द पर गहरा असर पड़ा, जिसके फलस्वरूप उनकी दलित जीवन सम्बन्धी कहानियों में नयी चेतना और तेजस्विता आई। सन् १९३१ में 'सद्गति' १९३२ में 'ठाकुर का कुँआ', १९३४ में 'दूध का दाम' जैसी कहानियाँ लिखी जिन्हें दलित-जीवन की महत्वपूर्ण कहानिया कहा जाता है। परंतु यह द्रष्टव्य है कि 'प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों में अछूत जातियों की समस्याओं को ग्रामीण जनता की आम समस्याओं का एक अंग बनाकर ही चित्रित किया गया है। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। उन्होंने एक ऐसे दौर में लिखना शुरू किया जबकि भारतीय जनता के तमाम वर्गों और हिस्सों से विदेशी साम्राज्यवाद का सीधा-सीधा टकराव था ।...' प्रेमचंद की विशेषत यह है कि ब्रिटीश साम्राज्यवाद के प्रति निरंतर संघर्ष करते हुए भी उन्होंने देश के अन्य वर्गों के बीच मौजूद अंतर्विरोधों को नजर से ओझल नहीं होने दिया। ग्रामीण समाज का चित्रण करते हुए उन्होंने अपनी कहानियों का केन्द्रीय मुद्दा वहाँ के शोषित-पीड़ित जन के उस आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न को बनाया। जैसा कि प्रेमचन्द ने दलित- जीवन पर कोई महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखीं हैं। उनके विषय में 'यह भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि उनके जीवन की पहली रचना भी दलितों से सम्बद्ध थी। जिमें उन्होंने अपने मामा और एक दलित स्त्री के अवैध सम्बन्ध का चित्रण किया है। इस कहानी की महत्वपूर्ण घटना है मामा की पिटाई। मामा की यह पिटाई गोदान के मातादीन प्रसंग में नये तेवर एवं सांस्कृतिक प्रश्नों के साथ दिखाई देती है। प्रेमचन्द ने मेरी पहली रचना के रूप में इस कहानी का जिक्र भी किया है। इसी तरह आखिर दौर में भी 'कफन' और 'जुरमाना' जैसी कहानी में दलित जीवन है।' प्रेमचन्द के दलित जीवन की कहानियों के बारे में विद्वानों ने अलग-अलग कहानियों की सूची गिनाई है। डॉ. कान्तिमोहन के बारे में विद्वानों ने अलग-अलग कहानियों की सूची गिनाई है। डॉ. कान्तिमोहन की दलित कहानियों की सूची में सौभाग्य के कोड़े, मंदिर, मंत्र, घासवाली, सद्गति, ठाकुर का कुँआ, दूध का दाम,

लोकमत का सन्मान, सवा सेर गेहूँ, सभ्यता का रहस्य, शूद्रा, सती लांछन, आगा पौछा, गुल्ली-डंडा, देवी, जुरमाना, कफन आदि प्रमुख हैं। वहीं रत्न कुमार संभारिय ने मुक्ति मार्ग, मंत्र, मंदिर, घासवाली, पूस की रात, सद्गति, ठाकुर का कुँआ, दूध का दाम, और कफन कहानियों को प्रेमचन्द और दलित समाज के विवेचन के अंतर्गत लिया है। जबकि रविन्द्र कालिया ने 'दलित जीवन की कहानियाँ' संपादिक पुस्तक में मंत्र-१, 'कजाक', 'मंदिर शुद्र', 'सौभाग्य के कोड़े', 'जुर्माना', 'कफन', 'दूध का दाम', 'गुल्ली डंडा', 'ठाकुर का कुँआ', 'दोनों तरफ से', 'लांछन-२', 'राष्ट्र का सेवक', 'सद्गति', 'आगा पिछा', 'सिर्फ एक आवाज', एवं 'घासवाली' कहानियों को प्रेमचंद की दलित कहानियों के रूप में शामिल किया है। वैसे 'दलित जीवन एवं मुक्ति आन्दोलन से जुड़ी प्रेमचन्द की पहली कहानी १९११ ई. में प्रकाशित दोनों तरफ से' है और दूसरी १९१३ ई. में छपी 'सिर्फ एक आजाव' है, किन्तु छूआछूत के सवाल उठाने वाली इस कहानी में कोई दलित पात्र नहीं है और यह कहानी भी आर्य समाजी सुधार घेतना से प्रभावित है, किन्तु इस अर्थ में इस कहानी का महत्व है कि प्रेमचन्द ने दलित प्रश्न पर मध्यवर्गीय चरित्र के अन्तर्विषयों को, उनकी कथनी- करनी के अन्तर को पूरी बेबाकी के साथ उद्घाटित किया है। यहाँ प्रेमचन्द की सिर्फ उन्हीं कहानियों का विवेचन करेंगे जिसमें दलित-जीवन एवं समस्या प्रमुखता से चित्रित है।

2. सौभाग्य के कोड़े

'सौभाग्य के कोड़े' प्रेमचन्द की एक महत्वपूर्ण कहानी है। इसमें प्रेमचन्द ने अपूत समस्या का एक क्रांतिकारी समाधान मिलता है। यह कहानी जून १९२४ में प्रभा पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। 'इसका नायक नथुवा नामक एक अनाथ बालक है। राय भोलानाथ ने उसे एक ईसाई के पंजे से छुड़ाया था और वह उनकी रोटियों पर पल रहा था। रायसाहब के बंगले में झाड़ू लंगाना और इसलिए अन्य नौकर-चाकर उसे भंगी कहते थे। रायसाहब एकमात्र लाइली पुत्री रत्ना को अपनी दया परन पलनेवाले भांजों- भतीजों और नौकर-चाकरों से अलग रखते थे। रत्ना बड़ी सुशील और दयामयी थी कु इससे वह लौंडा उसके मुँब लग गया था।' एक दिन सहज अनुभव कर ही रहा था कि रायसाहब ने उसकी यह हरकत देख ली और हंटर से उसे बेहद पीटा और बंगले से निकाल दिया। वहाँ से निकल कर नथुवा अपनी बिरादरीवालों की शरण गया ये भंगी शहनाई और तबला बजाते थे। उस्ताद घूरे ने नथुवा को बड़े परिश्रम से गायन-वादन सिखाया और ग्वालियर के संगीत विद्यालय के अध्यक्ष के आग्रह पर उसे संगीत विद्यालय में दाखिल करा दिया। पांच वर्षों नाथूराम यहाँ से 'समाज का भूषण' बनकर निकाला। अब वह कुलीन ब्राह्मण की तरह आचार-विचार से रहने लगा और ना.रा. आचार्य या सिर्फ आचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आचार्य महोदय विदेश गये और वहाँ से नाम, धन और विद्या प्राप्त करके देश लौटे। वह लखनऊ में ही बस गये, जाह से उनकी जिंदगी शुरू हुई थी। अब वह मदन कंपनी की तमाम शाखाओं के निरीक्षक थे। उनकी तनखाह तीन हजार रु० मासिक थी। लखनऊ में उनकी मुलाकात रत्ना और रायसाहब से हुई। मदन कंपनी ने नीलामी में राया भोलानाथ का वह बंगला खरीद लिया था और आचार्यजी को रियायिश के लिए रत्नावाला कमरा और पलंग आदि ही तय पाया था। यह मानकर कि ऐसा आचारवान पुरुष ब्राह्मण जाति का ही हो सकता है। रायसाहब ने रत्ना का विवाह आचार्य से कर दिया। विवाह के बाद आचार्य को पता चला कि रत्ना ने तो उन्हें लखनऊ स्टेशन पर उतरते ही पहचान लिया था। रायसाहब नथुवा को नहीं पहचान सके थे और रत्ना की राय है कि उनसे रहस्या को गुप्त की रखा जाय वरना वह आत्महत्या कर लेंगे।

सौभाग्य के कोड़े की कहानी मोटे तौर पर यही है, परन्तु इसका दलित संदर्भ में विश्लेषण विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से किया है। 'सौभाग्य के कोड़े' कहानी के बहाने विजेन्द्र नारायण सिंह ने प्रेमचन्द पर महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हुए लिखा है कि प्रेमचन्द प्रथम भारतीय लेखक हैं जो अवर्णों और सवर्णों के बीच रौटी-रौटी का संबंध स्थापित करते हैं। इसका प्रमाण प्रेमचन्द की कहानी 'दूध का दाम' और 'सौभाग्य के कोड़े'। 'सौभाग्य के कोड़े' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि एक दलित अपने पूर्व स्वामी की बेटी जिसके प्रति मन में बालसुलभ साहचर्य से पैदा हुआ राग तत्त्व भी हैं, उसे अपनी व्याहता बना लेता है, यह प्रेमचन्द की क्रांतिकारी उद्भावना है एवं दलित मुक्ति आन्दोलन के लिए अविस्मरणीय दृष्टि भी है।..... दर असल यह कहानी अस्पृश्यता मुक्ति के इतिहास में शिक्षा के महत्व को रेखांकित करने वाली कहानी है।' इसी संदर्भ में डॉ. कांतिमोहन कहते हैं कि इस कहानी में प्रेमचंद का मुख्य बल उन सामाजिक परिस्थितियों पर भी है जो अछूतों को अछूत बनाये रखती हैं। किसी भी कारण से यदि अछूतों के बाल उन स्थितियों की गिरफ्त

से छूट सकें तो वे सर्वों के बालकों की भाँति ही प्रगति कर सकते हैं, यह दिखाना ही कहानीकार का मुख्य उद्देश्य नजर आता है। इसका समर्थन दलित लेखक कंवल भारती भी करते हैं। वे लिखते हैं, 'प्रेमचंद दलितों की' शिक्षा के पक्षधर थे। इस सन्दर्भ में उनकी 'सौभाग्य के कोड़े' सबसे महत्वपूर्ण कहानी हैं। यह एक नथुवा नामक अनाथ भंगी युवक की कहानी है।..... प्रेमचन्द बताना चाहते थे कि विद्या किसी की बपौती नहीं है, बस अवसर मिलना चाहिए। दलितों को अवसर नहीं मिले, इसलिए वे पिछड़ गए। नथुवा को अवसर मिला, तो वह आचार्य बन गया।

3. मंदिर

प्रेमचन्द की मंदिर कहानी मई १९२७ ई. में 'चांद' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी दलितों के मंदिर प्रवेश की समस्या पर लिखी गई है। इस कहानी में 'विधवा सुखिया का एकमात्र बच्चा, जियावान, बीमार था। स्वप्न में अपने स्वर्गीय पति के निदेशानुसार वह मनौती मांग बैठी, 'भगवान!' मेरा बालक अच्छा हो जाये, तो मैं तुम्हारी पुजा करूंगी। अनाथ विधवा पर दया करो।' (ठाकुर का कुँआ, पृ-३२)। बच्चा कुछ देर के इशे चंगा हो गया 'मगर जब संध्या समय फिर जियावन का जी भारी हो गया, तब सुखिया धबरा उठी। तुरंत मन में शंका उत्पन्न हुई कि पूजा में विलंब करने से ही बालक फिर मुरझा गया है' (ठाकुर का कुँआ, पृ.३४)। अपने चांदी के कड़े गिरवी रखकर अछूत सुखिया पूजा की थाली सजाकर मंदिर पहुंची, लेकिन इसे मंदिर के भीतर जाने से रोक दिया गया। उसके आसनों और फरियाद का मंदिर के पुजारी और भक्त जन पर कोई असर नहीं हुआ। चमारिन के छू देने से भगवान के अपवित्र होने का डर था। सुखिया वहां से हटकर खड़ी हो गया और रात में उसने एक बार फिर पुजारी से मंदिर में जाकर पूजा करने की इजाजत मांगी। चालाक पुजारी ने उसे इजाजत तो नहीं दी, अलबता उसका एकमात्र रुपया झटककर जियावन के आरोग्य के लिए उसे एक ताबीज थमाकर वापस भेज दिया। ताबीज का कोई असर नहीं हुआ। बालक की हालत बिगड़ती ही गयी रात को तीन बजे एक हाथ में थाली और दूसरे में जियावन को संभाले वह फिर मंदिर जा पहुंची। वल ताला तोड़कर मंदिर के भीतर घुसना ही चाती थी कि पुजारी के 'घोर-चोर' का शोर सुनकर वहां भगत-मंडली जमा हो गयी। एक बलिष्ठ ठाकुर ने उसे धक्का दिया जिससे बालक उसके हाथ से छूटकर जा गिरा और मर गया। यह देखकर सुखिया की 'दोनों मुट्ठियां मिच गयीं। दांत पीसकर बोली- पापियों, मेरे बच्चे के प्राण लेकर अब दूर क्यों खड़े हो ? मुझे भी क्यों नहीं उसी के साथ मार डालते ? मेरे छू लेने से ठाकुरुजी को छूत लग गयी। पारस को छूकर लोहा सोना हो जाता है, पारस लोहा नहीं हो सकता। मेरे छूने से ठाकुर जी अपवित्र हो जायेंगे। मुझे बनाया, तो छूत नहीं लगी? लो, अब कभी ठाकुर जी को छूने नहीं जाऊंगी। ताले में बंद रखो, पहरा बिठा दो।' (ठाकुर का कुँआ, पृ.४४) इसके बाद, 'सुखिया ने एक बार फिर बालक के मुँह की ओर देखा। मुँह से निकला हाथ मेरे लाला। फिर वह मुर्छित होकर गिर पड़ी। प्राण निकल गये। बच्चे के लिए प्राण दे दिये। (ठाकुर का कुँआ, पृ. ४५)' प्रेमचन्द इस कहानी के माध्यम से तत्कालीन समय की एक महत्वपूर्ण समस्या को उठाया है। डॉ. कान्तिमोहन लिखते हैं, 'मंदिर दलित और शोषित चमार जाति की एक सदस्य, सुखिया के विद्रोह और बलिदान की कहानी है। यह उस हृदयहीन व्यवस्था के प्रति दुःखांत विद्रोह की कहानी है जो भूमिहीन, निर्धन और निर्बल तबकों के आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न में धर्म से भरपूर सहायता लेती है। उस दौर में पूंजीपति वर्ग और पाश्चात्य शिक्षा संपन्न मध्यमवर्ग के व्यक्तियों की रहनुमाई में अछूतों का जो समाज-सुधार आंदोलन चल रहा था, उसमें अछूतों के मंदिर प्रवेश के पक्ष में जो तर्क दिये जा रहे थे उनकी सीमा का अतिक्रमण कहानी में सुखिया द्वारा दिये गये तर्क नहीं कर पाते। लेकिन जाहिरा तौर पर धर्म और वास्तव में अधर्म और अन्याय पर आधारित व्यवस्था के विरुद्ध चमारिन सुखिया का यह चूड़ांत विद्रोह प्रेमचंद की निजी विशेषता है।' कंवल भारती इस कहानी के बारे में लिखते हैं कि 'प्रेमचन्द इस कहानी में न सिर्फ हिन्दुओं के पाषाण हृदय को दर्शाते हैं, बल्कि भगवान की दीनबन्धु की छवि को भी तोड़ते हैं। वे इस यथार्थ को रेखांकित करते हैं कि दलित जिस भगवान या ईश्वर में विश्वास करता है, वह उसकी कोई मदद नहीं करता है, यह उनका है ही नहीं, वह तो सर्वों का भगवान है।' जबकि रत्नकुमार सांभरिया इस कहानी के संदर्भ में प्रेमचन्द पर सवाल खड़े करते हैं। उनके अनुसार, 'प्रेमचंद का ध्येय अछूतों को मंदिर-प्रवेश तक ही था। अछूतों को आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाने, शैक्षणिक दृष्टि से उनका अननयन कराने सामाजिक

दृष्टि से समानता लाने, छूआछूत मिटाने और सामूहिक भोज कराने की महात्मा फूले और गांधी जी जैसी प्रगतिशील सोच उनमें कतई नहीं थी।'

4. मंत्र

'मंत्र' शीर्षक से प्रेमचंद की दो कहानियाँ हैं। 'मंत्र-१' का प्रकाशन फरवरी १९२६ में 'माधुरी' पत्रिका में हुआ था। जबकि 'मंत्र-२' का प्रकाशन मार्च १९२८ में 'विशाल-भारत' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। 'मंत्र' कहानी प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियों में से है, परंतु दोनों कहानियों की कथा भूमि भिन्न है। 'मंत्र-१' कहानी अछूतों को हिंदू धर्म में जोड़े रखने की वकालत है। १५ इस कहानी में, 'पं. लीलाधर चौबे हिंदू समा के कर्मधार थे।' मद्रास से यह समाचार पाकर कि वहां मुतलाओं ने बड़े जोश से तबलीग का काम शुरू किया है हिंदू समझा ने धर्म-विमुख हिंदुओं का उद्धार करने का जिम्मा चौबे जी को सौंपा। पहली ही सभा में उनका सामना एक बूढ़े अछूत से हुआ:

बूढ़ा : आप जब इन्हीं महात्माओं की संतान है, तो फिर उंच-नीच में क्यों इतना भेद मानते हैं?

लीलाधर इसलिए कि हम पतित हो गये हैं-अज्ञान में पड़कर उन महात्माओं को भूल गये हैं।

बूढ़ा: अब तो आपकी निद्रा टूटी है, हमारे साथ भोजन करेंगे ?

लीलाधर : मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

बूढ़ा अब तो आपकी निद्रा टूटी है, हमारे साथ भोजन करेंगे ?

लीलाधर मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

बूढ़ा: मेरे लड़के से अपनी कन्या का विवाह कीजिएगा ?

लीलाधर जब तक तुम्हारे जन्म संस्कार न बदल जाये, जब तक तुम्हारे आहार-व्यवहार में परिवर्तन हो जाय, हम तुमसे विवाह का संबंध नहीं कर सकते, माँस खाना छोड़ो, मदिरा पीना छोड़ो, शिक्षा ग्रहण करो, तभी तुम उच्च वर्ण के हिंदुओं में मिल सकते हो। (ठाकुर का कुआ, पृ. १३४)

5. वार्तालाप आगे बढ़ता है ?

लीलाधर : वर्ण-भेद तो ऋषियों ही काकिया हुआ है। उसे तुम कैसे मिटा सकते हो ?

बूढ़ा : ऋषियों को मत बदनाम कीजिए। यह सब पाखंड आप लोगों का रचना हुआ है। आप कहते हैं- तुम मदिरा पीते हो, लेकिन आप मदिरा पीने वालों की जूतियाँ चाटते हैं। आप हमसे माँस खाने के कारण चिनाते हैं, लेकिन आप गो-माँस खाने वालों के सामने नाक रगड़ते हैं। इसलिए न कि वे आपसे बलवान हैं। आपके धर्म में वहीं ऊँचा है, जो बलवान है, वही नीच है, जो निर्बल हो। यही आपका धर्म है। (ठाकुर का कुआ, पृ. १३५-१३६)। इधर तो चौबेजी की दाल गली नहीं और उधर तबलीग वालों को चौबेजी की हत्या ही इस्लाम की सबसे बड़ी सेवा जान पड़ी। 'गाजियों' ने उन पर हमला किया और मरा हुआ जानकर छोड़ गये। संयोगवश वही बूढ़ा अछूत उधर आ निकला और मृतप्राय पंडितजी को उठाकर अपने गाँव ले आया। उसने और उसके परिवार ने जी-जान से सेवा करके उन्हें मौत के मुँह से निकाल दिया। हिंदु सभा और उनके घरवालों ने उनकी कोई खोज खबर न ली और उधर चौबेजी खा-पीकर तंदुरस्त हो गये। अचानक गाँव पर प्लेग का आक्रमण हुआ। बूढ़ा खुद प्लेग की चपेट में आ गया। चौबेजी गाँव वालों द्वारा लौट जाने के अनुरोध को ठुकराकर उनकी सेवा-सुश्रूषा में जुट गये। उन्होंने अपनी गलन और त्याग से उन्हें मौत के मुँह से निकाला। इसके बाद 'पंडितजी ने किसी को शुद्ध नहीं किया। उन्हें अब शुद्धि का नाम लेते शर्म आती थी- मैं भला इन्हें क्या शुद्ध करूँगा, पहले अपने को तो शुद्ध कर लूँ। ऐसी निर्मल एवं पवित्र आत्माओं को शुद्धि की ढोंग से अपमानित नहीं कर सकता। 'यह मंत्र था जो उन्होंने उन चांडालों से सीखा था, और इसी के बल पर वह अपने धर्म की रक्षा करने में सफल हुए थे।' 'पंडितजी अभी जीवित है, पर अब सपरिवार उसी प्रांत में उन्हीं भीलों के साथ रहते हैं।' (ठाकुर का कुआ पृ. १५५) डॉ. कांतिमोहन 'मंत्र-१' कहानी के बारे में टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि, 'स्पष्ट ही यह कहानी शुद्धि आंदोलन के विरुद्ध लिखी गयी है।'... प्रेमचंद इन आंदोलन के विरुद्ध थे क्योंकि ये धार्मिक कट्टरता बढ़ाने वाले और सांप्रदायिक सौमनस्य पर

चोट करनेवाले थे। प्रेमचंद ऐसे किसी भी प्रयत्न के प्रबल विरोधी थे जो राष्ट्रीय एकता में बाधक हो। इस कहानी में भी उन्होंने पंडित लीलाधर चौबे के चरित्र के माध्यम से यही प्रदर्शित करने की कोशिश की है जिसे जब तक सवर्णों द्वारा अछूत जातियों को बराबरी का दर्जा नहीं दिया जाता और समाज- सुधारक उनके बीच रहकर रचनात्मक काम नहीं करते तब तक केवल हिंदू धर्म की श्रेष्ठता या आर्य जाति के महिमा-गान मात्र से, अछूतों को विधमर्मी होने से नहीं रोका जा सकता। 'कंबल भारती का मानना है कि 'दे (प्रेमचंद)' 'मंत्र-१' कहानी में धर्मांतरण का समर्थन करते हैं, जिसमें अछूत पात्र कहता है कि हिन्दु समाज में रहते हुए हमारे माथे का कलंक नहीं मिटने वाला है।' जबकि रत्नकुमार सांभरिया 'मंत्र' कहानी को यथास्थिति वाली कहानी मानते हैं। उनके अनुसार 'प्रेमचंद'ने 'मंत्र' कहानी में अछूतों और आदिवासियों को उसी धर्म में बनाए रखा। मुल्लाओं को मर्ची दिला दी। सनातन धर्म को विजयी कर दिया। अलग मंदिर बनवा दिए। शंख घंटे बजवा दिए। अर्घ्य की गंध उठा दी, लेकिन खेद है ये दलित और आदिवासी विरोधी अपनी दूषित मानसिकता से मुक्त नहीं हो पाए। कहानी का अंत सबूत है- 'यह मंत्र था, जो उन्होंने (चौबजी) उन चांडालों से सीखा था। और इस बल से वे अपने धर्म की रक्षा करने में सफल हुए थे।

वहीं 'मंत्र-२' कहानी के केंद्र में एक दलित-पात्र बूढ़ा भगत है। यह कहानी 'मंत्र-१' की तुलना में ज्यादा मार्मिक एवं सांकेतिक है। 'संरचना की दृष्टि से कहानी संयोग के तत्वों से गढ़ी है और यह संयाग कहानी की जनपक्षधरता को कमजोर भी करता है। किन्तु इस कहानी की जनपक्षधरता को महत्वपूर्ण बनाती है। डॉ. चढढा अभिजन के प्रतीक है और प्रेमचन्द की दृष्टि में निष्ठकुर है, विदूष एवं अमानवीय है। बूढ़ा भगत सर्वहारा उपेक्षित का प्रतीक है, जो प्रेमचन्द के यहाँ सदाशयता का प्रतिमूर्ति है। यह यातनाग्रस्त है, उपेक्षित है इसलिए प्रेमचन्द इसी के साथ हैं।... यह कहानी इस बात की प्रमाण है कि प्रेमचन्द अविस्मरणीय चरित्र, इसी साधारण जन से चुनते हैं- जो यहाँ बूढ़ा भगत के रूप में है। बूढ़ा भगत के पास वह मंत्र है जो यहाँ बूढ़ा भगत के पास वह मंत्र है, जिससे डॉ. चढढा भगत के रूप में है। इलाज का मंत्र तो डॉ. चढढा के पास भी था, जिससे बड़े भगत का बेटा बच सकता था, किन्तु वे अपनी अभिजनोचित दम्भ, एवं अहंकार में सेवा, नैतिकता से च्युत हैं, जबकि बूढ़ा भगत सेवा, समर्पण, नैतिकता के पथ पर है, इसीलिए प्रेमचन्द का वह नायकत्व पाता है।... यह छोटे कहे जाने वाले लोगों के बड़पन की कहानी है।

6. दूध का दाम

'दूध का दाम' कहानी जुलाई १९३४ में 'हंस' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। 'दूध का दाम' प्रेमचन्द की एक यथार्थवादी कहानी है। 'दूध का दाम' कहानी का एक खास अर्थ है। सद्गति, 'ठाकुर का कुँआ' के साथ मिलकर यह कहानी दलित शोषण के करुण, मार्मिक, यथार्थ का उद्घाटन तो सकती ही है, वर्णव्यवस्था की कुरताओं को भी उद्घाटित करती है एवं समाज के उच्च वर्ण की उच्चता के अन्तर्विरोधों एवं पाखण्डों को भी उद्घाटित करती है। 'दूध का दाम' कहानी का कथानक यह है कि 'गाँव के जमींदार, बाबू महेशनाथ के घर में तीन पुत्रियों के बाद पुत्र जन्म हुआ। हमेशा की तरह दाई का काम मूंगी भंगिन ने ही अंजाम दिया। इस बार उनकी पत्नी को दूध नहीं उतारा। लिजाहा, मूंगी दाई भी बनी और दूध पिलाई भी। साल भर बाद बिदारती बेटी और उसने इस पाप के लिए बाबूजी से प्रायश्चित की मांग की। 'प्रायश्चित तो न हुआ, लेकिन मूंगी को गंदी से उतरना पड़ा।' मूंगी को यह गद्दी बहुत महंगी पड़ी। दूध तो मालिक का बच्चा डकार गया। उसका अपना उपेक्षित बच्चा मंगल दुर्बल और रोगी रहने लगा। मालिक के बेटे के सामने पिढ़ी-सा लगता था।' कुछ ही दिन बाद प्लेग में मूंगी का घरवाला, गूदड़, गुजर गया और उसके बाद महेशनाथ के घर का परनामा। साफ करते समय, सांप के काटने से मंगी भी चल बसी। 'मंगल अब अनाथ था।' दिन-भर महेश बाबू के द्वार पर मंडलाया करता। घर में जूठन इतना बचता था कि ऐसे-ऐसे दस-पांच बालक पल सकते थे। खाने की कोई कभी न थी। बस उसका कोई अपना था, तो गांव का कुत्ता, जो अपने सहवर्गियों के जुल्म से दुःखी होकर मंगल की शरण आ पड़ा था। दोनों एक ही खाना खाते, एक ही टाट पर सोते, तबीयत भी दोनों की एक-सी थी, और दोनों एक दूसरे के स्वभाव को जान गये थे। कभी आपस में झगडा न होता। (ठाकुर का कुआ, पृ. ५३-५४) एक दिन खेल में सुरेश में पहले तो मंगल अपमान किया और बाद में अपनी मां के पास जाकर उसकी झूठी शिकायत कर दी-मंगल ने छू दिया। देवीजी ने हुकम दिया, 'अभी-अभी यहाँ से निकल जा। फिर से इस द्वार पर तेरी सूरत, नजर आयी, तो खून ही पी जाऊँगी। मुक्त की रोटियां

खा-खाकर शरारत सूझती हैं। (ठाकुर का कुँआ, पृ. ५९)।' मंगल अपने पुश्तैनी मकान के खंडहर पर जाकर खूब रोया। पेट की आग से मजबूर होकर मंगल फिर उसी द्वार पर जूठे टुकड़े खाने आ पहुँचा। टामी उसके साथ था। 'मंगल ने एक हाथ से टामी का सिर सहलाकर कहा-देखा, पेट की आग ऐसी होती है। यह लात की मारी हुई रोटियाँ भी न मिलती तो क्या करते? टामी ने दुम हिलाई।' 'सुरेश को अम्मा ने पाला था।' टामी ने फिर दुम हिलाई। 'लोग कहते हैं 'दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता है और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है। टामी ने फिर दुम हिलाई (ठाकुर का कुँआ, पृ. ६३)' आलोचक दीपक प्रकाश त्यागी लिखते हैं कि 'टामी की हिलती हुई पूँछ उस मनुष्य समाज की निर्मम आलोचना है, जो एक वंचित दलित की पीड़ा को उसकी स्वाधीनता को अपनी नृशंशता के कारण नहीं समझ रहा है।...' हिलती हुई पूँछ एक बड़ने आंदोलन की आधारभूमि है, वर्ण-वर्ग केन्द्रित समाज व्यवस्था की कुरताओं का उद्घाटन है, पण्डित मोटेराम शास्त्री जैसे परोपजीवी ब्राह्मणवादी, पुरोहितवादी व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध का स्वर है, जिसे अपने समय में प्रेमचन्द सृजित कर रहे थे और आने वाले समय को बेचैन कर देने वाला निर्मम यथार्थ साँप रहे थे। डॉ. कान्तिमोहन 'दूध का दाम' कहानी के बारे में टिप्पणी करते हैं 'इसके माध्यम से कहानीकार भारतीय समाज की विडंबना ही दुहरा रहा है। 'दूध' अछूत जातियों की उस सेवा का प्रतीक है जो वे शताब्दियों से करती आयी हैं। मंगल का 'सवार' बनने का सवाल अछूतों की अपने अधिकारों की मांग है। यह एक आक्रमक रवैया है और इसे बातों से नहीं बहलाया जा सकता। यह रवैया सामाजिक यथार्थ में आये उस बदलाव से जुड़ा हुआ है जिसके चलते प्रेमचन्द गांधीवादी भूलभुलैया से निकल आये हैं और खुल्लमखुल्ला सवणों के अन्याय के विरुद्ध अछूतों के पक्षधर के रूप में सामने आ रहे हैं। जबकि कंवल मारती प्रेमचन्द को कठघरे में खड़े करते हैं। उनके अनुसार 'सन १९३४ में जिन दिनों' 'दूध का दाम' कहानी लिखी गई, प्रेमचंद गांधीजी के कलमकार अनुयायी थे। गांधीजी छुआछूत के खिलाफ थे और उनके आश्रम में मेहतरों के कई बच्चे पल रहे थे। प्रेमचंद ने गांधीवादी की उस सद्भावना से कोई पाठ नहीं सीखा।

7. घासवाली

घासवाली कहानी का प्रकाशन दिसम्बर १९२९ ई. में 'माधुरी' पत्रिका में हुआ था। यह कहानी 'दलित जीवन संदर्भ कोनये कोण से देखनेवाली कहानी है, जिससे दलित-स्वी की प्रतिरोध चेतना भी कहानी को नया आयाम देती है।' इस कहानी के केन्द्र में मुलिया चमारिन है। घासवाली कहानी की नायिका मुलिया, महावीर चमार की घरवाली थी। वह इस 'ऊसर में गुलाब का फूल थी।' गाँवके युदक उसकी एक चितवन के लिए तरसते थे। एक दिन वह घास काटने गयी थी कि युवा ठाकुर 'चैनसिंह ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला तुझे क्या मुझ पर जरा भी दया नहीं आती ? लेकिन मुलिया जरा भी नहीं डरी, जरा भी न झिझकी झौआ जमीन पर गिरा दिया, और बोली- छोड़ दो नहीं तो मैं चिल्लाती हूँ। 'चैनसिंह के छक्के छूट गये।' उसने हाथ छोड़ दिया। 'मुलिया जब कुछ दूर निकल गयी, तो क्रोध और भय तथा अपनी बेबसी का अनुभव करके उसकी आँखों में आंसू भर आये। उसने कुछ देर जब्ब किया, फिर सिसक-सिसककर रोने लगी। अगर वह इतनी गरीब न होती, तो किसी की मजाल थी कि इस तरह उसका अपमान करता (ठाकुर का कुँआ, पृ. ८२)।' एक साधारण चमार युवती के इस साहस और आत्मगौरव के प्रदर्शन से चैनसिंह का जीवन ही बदल गया। एक बार जब मुलिया उसके खेत से घास काट रही थी चैनसिंह से उसकी मुठभेड़ हुई। इस बार उसने अपने तकों से चैनसिंह को परास्त कर दिया। चैनसिंह पर जवानी का नशा था। मुलिया के शीतल छींटी ने नशा उतार दिया, जैसे उबलती हुई चाशनी में पानी की छींटे पड़ जाने से फेन मिट जाता है, मल निकल जाता है, और निर्मल शुद्ध रस निकल आता है। 'चैनसिंह उस दिन से दूसरा ही आदमी हो गया।' कहानी में दिखाया गया है कि गरीबी और पिछड़े हुए तबकों के लोगों के प्रति उसका दृष्टिकोण और व्यवहार गुणात्मक रूप से बदल गया। वह अब उनसे बराबरी के स्तर पर बात करने लगा। एक दिन वह कचहरी गया तो उसने मुलिया को तांगेवालों से हंस-हंसकर बात करते और घास बेचते पाया। उसे बहुत कष्ट हुआ। अगले ही दिन उसने महावीर को बुलाकर कहा- 'तुम मुझसे एक रूपया रोज ले लिया करो। बस, जब मैं बुलाऊँ, तो इक्का लेकर चले आया करो। तब तो तुम्हारी घरवाली को घास लेकर बाजार न जाना पड़ेगा। तुम्हारी आबरू मेरी आबरू है। और भी रूपये पैसे का जब काम लगे, बेखट के चले आया करो। हाँ, देखो मुलिया से इस बात को भूलकर भी चर्चा न करना, (ठाकुर का कुँआ, पृ. ९९)।' लेकिन मुलिया

को महावीर ने सब-कुछ बता दिया। वह इसके बाद पहलकदमी करके चैनसिंह से मिली: 'एकांएक मुलिया ने मुस्कराकर कहा- यही तुमने मेरी बांह पकड़ी थी। चैनसिंह ने लज्जित होकर कहा- उसको भूल जाओ मूला।' मुझ पर जाने कौन भूत सवार था। मुलिया गद्गद कंठ से बोली उसे क्यों भूल जाऊँ? उसी बांह गहे की लाज तो निभा रहे हो। गरीबी आदमी से जो चाहे करावे। तुमने मुझे बचा लिया (ठाकुर का कुँआ, पृ. १००)। डॉ. कांतिमोहन प्रेमचन्द की कहानी 'घासवाली' के महत्व के बारे में कहते हैं कि 'इस कहानी से प्रेमचंद यह साबित करना चाहते हैं कि सदियों शोषित प्रताड़ित और पशुवत जीवन व्यतीत करने वाले अछूत तबकों में भी आत्मसन्मान की ज्योति है और इसके प्रकाश में सर्वर्ण भी अपनी भूल सुधार सकते हैं।... इसमें जमींदार चैनसिंह दलित मुलियाँ और उसके पति महावीर की आर्थिक सहायता करके उनकी बहुत कुछ कठनाइयें दूर कर देता है- रचनाकार प्रेमचन्द की श्रेष्ठता का यह एख और सबूत है।' आलोचक दीपक प्रकाश त्यागी प्रेमचंद की कहानी 'घासवाली' के संदर्भ में लिखते हैं कि 'प्रेमचंद की कहानी कला की यह विशिष्टता है कि चैनसिंह मुलिया के संकल्प के सामने गंगा हो जाता है, मुलिया की फटकार उसका व्यक्तित्वांतरण कर देती है। वह चैनसिंह, जो सामंती सत्ता का प्रतिनिधि चरित्र है।... किन्तु मुलिया की दृढ़ता, संकल्पशक्ति, स्वाधीनचेतना एवं पतिव्रता उसका दम्भ तोड़ देती है और उसका व्यक्तित्वान्तरण कर देती है।' दलित लेखक रत्नकुमार सांभरिया ने भी दलित चित्रण की दृष्टि से 'घासवाली' कहानी का महत्व रेखांकित किया है। उनके अनुसार, 'मुंशी प्रेमचंद की 'घासवाली' कहानी दलित चेतना, स्वाभिमान और जागृति के लौसी जलाती है। यह कहानी उस समय लिखी गई थी जब समूचा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा था, सामंतवादसुखी था और दलित वर्ग अशिक्षा, अज्ञान और दासता में सिसक रहा था, कहानी की पात्र मुलिया के चरित्र के बहाने लेखक ने दलित-विमर्श और स्वी अस्मिता को एक आयाम प्रदान किया है।'

8. सद्गति

प्रेमचंद की 'सद्गति' कहानी अक्टूबर, १९३१ में 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई। 'प्रेमचन्द की दलित जीवन सन्दर्भों पर लिखी कहानियों में 'सद्गति' सर्वाधिक बेधक, रोमांचक है, किन्तु दलित विमर्शकारों की दृष्टि में दलित विरोधी कहानी है। दलितों के लिए, अस्पृश्यों के लिए निरन्तर नरक रचने वालों में पुरोहित, ठाकुर एवं शाहूकार प्रमुख हैं- जो प्रेमचंद की इस कहानी में वर्णाश्रम व्यवस्था, सामंतवादी व्यवस्था एवं महाजनी सभ्यता-पूंजीवादी व्यवस्था के क्रूर चरित्र के रूप में दिखाई दे रहे हैं। इनका सर्वाधिक क्रूर पक्ष एकाग्र रूप में इसी कहानी में उभरकर सामने आया है। प्रेमचन्द की 'सद्गति' कहानी की कथा कुछ इस प्रकार है, 'दुःखी चमारकी बिटीया की सगाई थी। वह साइत सगुन विचारवाने के लिए पंडित घासीराम के यहां पहुंचा। पंडितजी ने उसे ढेर सारी बेगार बता दी और शाम तक चलने का वादा किया। दुःखी बेगार करने में लगा रहा। पंडितजी ने उसे खाना भी नहीं दिया। इस बेगार में लकड़ी की वह गांठ काटना भी शामिल था' जिस पर पहिले कितने ही भक्तों ने अपना जोर आजमा लिया था। भूखा प्यासा दुःखीइश मोटी गाँव को फाड़ते-फाड़ते भूख और थकान से वही ढेर हो गया। 'उसे मरा देखकर पंडितजी बदहवास होकर भागे और पंडिताइन से बले-दुखिया तो जैसे मर गया। पंडिताइन हकबकाकर बोलीं डू वह तो अभी लकड़ी चीर रहा थे।' पंडित हां, लकड़ी चीरते चीरते मर गया। अब क्या होगा? पंडिताइन ने शांत होकर कहा होगा क्या, चमरौन में कहला भेजो मुर्दा उठा ले जाये (ठाकुर का कुँआ, पृ. २६)। लेकिन, गाँव के एकमात्र गौड़ ने चमरौन में पहले ही जाकर चमारों से कह दिया 'खबरदार, मुर्दा उठाने मत जाना। अभी पुलिस की तहकीकात होगी। दिल्लगी है कि एक गरीब की जान ले ली। पंडित होंगे तो अपने घर के होंगे। लाश उठाओंगे तो तुम ही पकड़े जाओंगे। लिहाजा, जब पंडितजी चमरौन पहुंचे तो एक भी चमार लाश उठा लाने को तैयार नहीं हुआ। इधर लाश में से दुर्गन्ध उठने लगी। हारकर 'पंडितजी ने एक रस्सी निकाली। उसका फंदा बनाकर मुरदे के पैर में डाला, और फंदे को खींचकर कस दिया। अब कुछ धुंधलका था। पंडितजी ने रस्सी पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गाँव के बाहर घसीट ले गये। वहां से आकर तुरंत स्नान किया, दुर्गापाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का (ठाकुर का कुँआ, पृ. २९)।' कहानी लेखक की इस टिप्पणी के साथ खत्म होती है उधर की लाश को गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे। यही जीवन पर्यंत की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था।' 'सद्गति' कहानी की नहीं उसका शीर्षक भी बहुध्वन्यात्मक है। यह विचारणीय है कि 'सद्गति' किसी सद्गति? ब्राह्मण-देवता की सद्गति? ब्राह्मण देवता

की सद्गति इस अर्थ में कि उन्होंने अपने धर्मशास्त्र का निर्वाह किया, धर्म की ध्वजा को उन्नत रखा अपनी टेक से समझौता नहीं किया। इस अर्थ में 'सद्गति' कहानी इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था के आडम्बर, कठमुल्लेपन एवं त्रासदी को उद्धाटित करते हुए धार्मिक प्रतीकों एवं संस्कारों को न केवल कटघरे में खड़ी करती है, बल्कि उसकी भयावहता की ओर भी संकेत करती है, उसकी मनुष्य विरोधी भूमिका को भी उद्धाटित करती है। जहां तक 'दुःखी चमार की सद्गति' का प्रश्न है, वह इस अर्थ में है कि वह ब्राह्मण देवता के दरवाजे पर उनकी आज्ञा पालन करते हुए अपने प्राण छोड़ता है और ब्राह्मण का कंधा भले न मिले, फांस तो मिली ही, इस अर्थ में भी वह जहाँ समाज के धर्मभीरु स्वभाव को उद्धाटित करता है, जिसे देखकर ब्राह्मणवादी कुरताओं पर आक्रोश पैदा होता है। दोनों ही स्थितियों में कहानी निर्मम, कठोर, त्रासद, व्यंग्य है। डॉ. कान्तिमोहन, 'सद्गति' कहानी के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, 'सद्गति' सड़ते हुए सामंवादी की गिरफ्त में तरपते भारतीय ग्राम्य जीवन का एक यथार्थवादी दर्दनाक दस्तावेज है। पिछले सौ वर्षों से पूंजीवादी और उच्च शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीय नेतृत्व में चल रहे अछूतोंद्वारा आंदोलन का भारत के ग्रामों को क्या नकद लोभ मिलता था- 'सद्गति' उसे बेपर्दा करने की एक ईमानदार लेखकीय कोशिश है। परंतु रत्नकुमार संभारिया 'सद्गति' कहानी का विरोध करते हैं। उनके अनुसार, 'संसार की कहानियों को एकत्र कर एक-एक का समालोचनात्मक अध्ययन किया जाए।' उनमें एक कहानी ऐसी मिलेगी जो क्रूरता, कुत्सा और निकृष्टता का शिखर छूती है। दुःख इसका है कि वह कहानी अहिंसा का पुजारी कहलाने वाले भारत देश में लिखी गई है। कहानी का नाम 'सद्गति' है और उसके प्रणेता हैं, हिंदी कथा-जगत के नामचीन लेखक मुंशी प्रेमचंद।'

CONFLICT OF INTERESTS

None.

ACKNOWLEDGMENTS

None.

REFERENCES

- Tyagi, D. P. (2013). Premchand and the Dalit context (प्रेमचंद और दलित संदर्भ, अमिधा प्रकाशन). Amidha Prakashan Muzaffarpur.
- Bharti, K., (N.D.). Dalit-Vimarsh: Ek Punarpath—Bigal Mehta aur Vartaman Arthavatta (दलित-विमर्श: एक पुर्नपाठ बिगल महता और वर्तमान अर्थवता). Rajkamal Prakashan, Delhi.
- Pandey, M. (2015). Dalit Literature: Literature and the Dalit perspective (दलित साहित्य: लोकमत और दलित साहित्य का अवधारण और प्रेमचंद).
Kantimohan. (n.d.). Premchand and Dalit Discourse (प्रेमचंद और दलित विमर्श). Swaraj Prakashan.